International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

हर्ष कालीन आर्थिक दशा का अध्ययन

धर्मबीर
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
ईमेल : dharmbirchang82@gmail.com

सारांश

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तर भारत के राज वंशों में स्थाणीश्वर अथवा थानेश्वर का पुष्पभुति राजवंश सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं शक्तिशाली था। इस वंश का सबसे प्रतापी नरेश हर्ष था। हर्ष एक विजेता तथा साम्राज्य निर्माता होने के साथ–साथ एक कुशल प्रशासक भी था। उसके राज्यकाल में आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ थी। हर्षकालीन भारत के आर्थिक दशा के विषय में हमें बाण के ग्रंथों, चीनी स्त्रोतों तथा तत्कालीन लेखों से जानकारी मिलती है। अतः हम इस रिसर्च पेपर में हर्ष कालीन आर्थिक दशा का अध्ययन करेंगें।

मुख्य शब्द : *कोट्याधीश, काश्तकार, पुण्ड्र, मुक्ताफल, स्तुप, हट्टिका*

प्रस्तावना

हर्षकालीन आर्थिक अवस्था सुदृढ़ थी। बाण ने उज्जयिनी तथा कान्यकुब्ज का जो वर्णन किया है, उससे स्पष्ट होता है कि उस काल के लोग अत्यन्त समृद्धशाली थे। बाण के कथनानुसार उज्जयिनी के निवासी कोट्याधीश (करोड़पति) थे।[1] उसके बड़े–बड़े बाजारों में शंख, शुक्ति, मोती, मूंगे, मरकत और हीरा बिकने के लिए सजाए जाते थे।[2] वहाँ के उत्तुंग सौध, महाभवन तथा प्रासादों पर रेशम के झंडे फहराते रहते थे। उसके हरे–भरे उपवन, चित्रशाला, अंतहीन उत्सव, आनंद वाटिका और उसमें उद्यान जो केतकी के पराग में श्वेत हो रहे थे। यह सभी उसके निवासियों की समृद्धि को व्यक्त करते हैं। हर्षयुग में आय के मुख्य स्त्रोत कृषि, उद्योग, व्यापार और वाणिज्य थे।

प्राचीन काल से ही भारत की आय का मुख्य स्त्रोत प्राकृतिक उपलब्धियां रहीं हैं। अधिकतर लोग गाँवों में रहकर कृषि कार्य करते थे। हर्ष कालीन युग में खेती बड़े पैमाने पर होती थी। उस समय गाँवों में कई प्रकार की भूमि होती थी। वास्तु (निवास के योग्य), क्षेत्र (खेती के योग्य) तथा गोचर या बंजर भूमि। कहीं–कहीं जंगल का भी वर्णन मिलता है। उस

समय भारतीय जातियों का अलग–अलग पैतृक व्यवसाय था जिसका विभाजन क्रियात्मक विशेषताओं के आधार पर हुआ था। सामान्यतया ब्राह्मण और क्षत्रिय कृषि कार्य नहीं करते थे। वैश्य लोग अधिकतर बौद्ध और जैन धर्म से प्रभावित थे, जो उसी के प्रचार में लगे रहते थे। उस समय कृषि–व्यवस्था उन्नत थी। उस समय के सुस्त लोग भी समय से खाद देकर खेतों की जुताई बुनाई करते तथा उसे समय से काटते थे।[3] उस समय की मुख्य फसलें चावल, गेहूँ, अदरक, सरसों, लौकी, आम, खरबूज, तरबूज, इमली, बेर, कठबेल, हर्रा, बहेरा, आंवला, नारियल, कटहल, नाशपती, आलूबुखारा, आड़ू, जरदालू, अंगूर, अनार तथा मीठी नारंगियां आदि थी।[4] यह प्रमुख फलों तथा अनाजों की सूची विस्तृत तो काफी है, लेकिन सर्वसम्मति से इसे अपूर्ण साबित किया गया है।

गंगा के किनारे तथा गंगा और ब्रह्मपुत्र के बीच की सम्पूर्ण जमीन काफी उपजाऊ थी। बाण ने भी उस समय के श्रीकण्ठ जनपद और उसकी राजधानी थानेश्वर के वर्णन में वहाँ की कृषि पर प्रकाश डाला है। वह कहता है, 'हलों से खेत जोते जा रहे थे। चारों ओर पौधों के खेत फैले हुए थे। खलिहानों में कटी हुई फसल के पहाड़ लगे थे। चलती हुई रहट से सिंचाई हो रही थी। धान, राजमाष, मूंग और गेहूं के खेत सब ओर फैले थे।[5] इस प्रकार से वह अन्य खाद्य पदार्थों का भी नाम लेता है।[6] ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि सारे देश में सर्वत्र खेती होती थी और अन्य, फल, फूल अधिक मात्रा में पैदा होते थे। जैसा कहा गया है कि नदियों की घाटी में खेती होती थी इसलिए सिंचाई के लिए सरलता से पानी मिल जाता था। जहाँ पर नदी का पानी सुलभ न था, वहाँ सरकार की ओर अथवा जनता की ओर से तालाब खुदवाये जाते थे। बाण के विवरण से भी यह स्पष्ट होता है कि उस समय लोग सिंचाई भी करते थे। वह यह भी बताता है कि परसियन–पनचक्कियों से खेतों की सिंचाई की जाती थी।[7]

भूमि पर राजा का स्वामित्व था। वह भूमि या गाँवों को अपनी इच्छानुसार किसी को भी दान दे सकता था। किसान उसके काश्तकार होते थे, जो अपने उत्पादन का छठा अंश राज्य को कर के रूप में देते थे।[8] इन ग्रामों के शासक एवं कर वसूली के लिए राजा की ओर से एक ग्रामिक नियुक्त होता था, जो भूमि या ग्राम का पूर्ण स्वामी होता था और अपनी

अवधि तक भूमि या ग्राम का पूर्णरूपेण शासन करता था। परन्तु किसी भी समय राजा अपनी स्वेच्छा से उसे पदच्युत कर सकता था।

इसके अतिरिक्त राजकीय भूमि हुआ करती थी। राजकीय भूमि के चार भाग थे – एक भाग सरकारी कामों में खर्च होता था, दूसरे भाग से बड़े–बड़े सार्वजनिक कर्मचारियों की धन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी। तीसरा भाग प्रकाण्ड विद्वानों को पुरस्कार देने के निमित था और चौथा भाग विभिन्न सम्प्रदायों को दान देकर पुण्यार्जन करने के लिए था।[9]

यद्यपि भारत कृषि प्रधान देश था, परन्तु उद्योग भी उससे कम स्थान नहीं रखते थे। बाण और च्वान्–च्वांग दोनों ने उस समय के उद्योगों का विस्तृत वर्णन किया है। विभिन्न प्रकार के वस्त्रों[10] के विवरणों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सातवीं शताब्दी में सूती वस्त्रों का उद्योग विस्तृत था। च्वान्–च्वांग के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय में नौजवानों को पांच प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, जिसमें दूसरी विद्या शिल्पस्थान थी। शिल्पस्थान विद्या यान्त्रिक कलाओं से संबंधित थी।[11] इस प्रकार प्रारम्भ में लोग विभिन्न उपयोगी कलाओं का अध्ययन करते थे, इसी से लोग किसी भी उद्योग में कुशल थे। बाण ने भी राज्यश्री के समय विभिन्न वस्त्रों का वर्णन किया है। राजा भास्करवर्मा के द्वारा जो उपहार हर्ष को दिये गये उनमें भी कई प्रकार के वस्त्र थे। बाण के कथनानुसार पुण्ड्र (उत्तरी बंगाल) में अत्यधिक लाइनेन के वस्त्रों का उत्पादन होता था।[12]

उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय का वस्त्र उद्योग उन्नति पर था। आज की तुलना में भारतवासी अपने राजाओं और धनी व्यक्तियों के उपयुक्त वस्त्रों के उत्पादन की क्षमता के लिए गर्व कर सकता था।

लकड़ी–उद्योग भी अतिप्राचीन था। उस समय के मन्दिरों में रखे हुए चप्पलों का भी च्वान्–च्वांग द्वारा वर्णन हुआ है जो काठ के बनाए जाते थे। कौशाम्बी, श्रावस्ती आदि मन्दिरों में रखे च्वान्–च्वांग ने इन चप्पलों का वर्णन किया है। हमें और भी जहाजों, रथों, बरतनों आदि के उदाहरण मिलते हैं, जो लकड़ी के बने हुए थे। इससे उस समय के शान–शौकत स्पष्ट प्रतीत होती है।[13] उस समय के लोग हाथी–दांत का काम भी करते थे। हर्षचरित से पता चलता है कि हर्ष को भास्करवर्मा द्वारा दिए जाने वाले उपहारों में जलहस्तियों के मस्तक

से निकलने वाले मुक्ताफल से जड़े हुए हाथी–दांत के कुण्डल भी थे। जलहस्ती या जलेभ का तात्पर्य दरियाई घोड़े से है, जिसके मस्तक की हड्डी को खरद कर बढ़ाकर सम्भवतः गोल गुरिया या मोती बनाते थे।[14]

उस समय चमड़े का उद्योग भी प्रचलित था। लोग चमड़े के जूते तथा वस्त्र पहनते थे। च्वान्–च्वांग के कथनानुसार केरल के लोग जंगली–जानवरों के बालों से सजे रहते थे।[15] इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन बालों का कोई एक कपड़ा होता था, जो वहाँ के लोग पहनते थे। चमड़े अत्यधिक सूक्ष्म तथा लाभादायक होते थे। च्वान्–च्वांग ने हर्ष द्वारा दिये गये उपहारों में केवल एक लबादा लिया था, जो सफेद चमड़े का बना हुआ था, जिसका नाम हो–ला–ली था। इसकी विशेषता यह भी थी कि वह वर्षा में सिर को पानी से बचाता था।[16]

हर्षवर्धन युग में धातुओं का उद्योग भी काफी प्रचलित था। च्वान्–च्वांग के कथनानुसार कुछ परिवार के लोग बर्तनों की धातु पिघला कर बनाते थे। ये बर्तन सोने, चांदी, तांबे, लोहे, पीतल आदि के होते थे।[17] सभी लड़ाई के हथियार इन्हीं धातुओं को पिघला कर बनाये जाते थे। हर्षचरित से ज्ञात होता है कि तलवारों पर ऐसा पानी चढ़ाया जाता था कि उनमें दर्पण की भांति चेहरा भी देखा जा सकता था। ऐसा कहा जाता है कि रानी यशोमती ने अपना मुख तलवार की धार में देखा था।[18] वाराणसी में च्वान्–च्वांग ने एक देव की मूर्ति देखी, जो करीब 100 फीट ऊँचाई वाले मन्दिर में स्थापित थी।[19] नालन्दा में वह एक दूसरे तांबे की बुद्ध भगवान् की मूर्ति का वर्णन करता है, जो करीब 80 फीट ऊँची थी।[20] राज्यश्री के विवाहोत्सव पर देश–विदेश से चतुर शिल्पियों के झुंड बुलाये गए थे। उन शिल्पियों में बहुत से सुनार भी थे जो सोने को पिघला रहे थे।[21] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि देश के प्रत्येक कोने में चतुर कलाकार भरे हुए थे। उनमें से बढ़ई, चर्मकार, मूर्तिकार, हाथी–दांत का काम करने वाले, कलाकार, रंगरेज आदि अपना–अपना कार्य करते हुए बताए गये हैं।[22] विभिन्न प्रकार की सामग्रियां जो कामरूप के राजा भास्करवर्मा के द्वारा भेजी गयी थी, उनमें तत्कालीन उद्योगों पर प्रकाश पड़ता है। उन उपहारों की कीमती आभूषण, चमकीले, सुनहरे पानपात्र, कार्दरंग चमड़े के ढ़ाल, बेते के बने हुए आसन, कृष्ण–अगरू के तेल से भरे बांस के मोटे चोगे, रेशमी कपड़ों के बोरे, गोशीर्ष चन्दन, कस्तूरी के नाफे (कस्तूरी का कोशक),

आलेखय–फलकों के विचित्र सम्पुट (बाक्स), प्रबाल के वन पिंजरों तथा जल–हिस्तयों के मस्तक से निकलने वाले मुक्ताफल से जड़े हुए हाथी–दांत के कण्डल आदि थे।[23]

आभूषणों का प्रयोग प्रागैतिहासिक काल से चला आ रहा है। आभूषणों को बनाने का काम एकप्रतिष्ठित व्यवसाय माना जाता था। तत्कालीन जनता इस कला में काफी निपुण तथा विकसित थी। बाण के दोस्तों में एक हैरिक था, जो हीरा काटने की कला में निपुण था।[24] बाण से पता चलता है कि चन्द्रापीड़ हीरे, मोती तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों को पहचानने की कला में अत्यधिक निपुण था।[25]

बहुमूल्य पदार्थों को समुद्रों से एकत्र किया जाता था। फारस की खाड़ी में मोतियों की खोज का कार्य किया जाता था। यह एक प्रकार की कला थी, जिसमें समुन्द्र तट तथा तमिल देश के लोग अत्यधिक निपुण थे। एकदूसरा उद्योग नमक था। चीनी यात्री के कथनानुसार नमक का उद्योग मलकूट तथा सुराष्ट्र में था। प्राचीनकाल से नमक समुद्र के जल को छानकर बनाया जाता था।[26] पुनः वह कहता है कि यहां (सिन्ध में) अत्यधिक मात्रा में नमक मिलता है जो सिन्दूर के समान लाल होता है, अत्यधिक स्थानों पर यह नमक दवा के रूप में आता था।[27]

तत्कालीन मूर्तियों, प्रतिबिम्बों मन्दिरों, विहारों, स्तम्भों, स्तुपों के निर्माण से पता चलता है कि उस समय कैसे कारीगर थे, उनकी कलाकारिता कैसी थी और किस प्रकार अत्यधिक लोग शहरों में रहना पसन्द करने लगे थे। महाबोधी च्वान मन्दिर की संरचना तथा अजन्ता की गुफा की कलाकारी के आधार पर च्वान– च्वांग ने उस समय की अतिसूक्ष्म कलाकारिता का वर्णन किया है। कलाकारों, वास्तुकारों, निर्माताओं, रंगजेरों आदि का पेशा केवल लाभप्रद ही नहीं अपितु देश के विकास का भी रास्ता है। पशुपालन भी एक प्रकार का उद्योग था।[28] कुछ लोग दूसरे व्यवसायों जैसे कसाई, मुर्दाखोर (डोम), मछुएँ आदि में फंसे हुए थे।[29] कुछ के हथियार भी अत्यधिक मात्रा में तैयार किए जाते थे।[30] कश्मीर तथा सिन्ध के लोग घोड़ों का उद्योग करते थे।[31] हाथियों को कामरूप तथा कलिंग के जंगलों से पकड़कर लाया जाता था।[32] समाज के प्रायः सभी लोग अपनी–अपनी जीविका तथा सम्मान के उद्योगों में लगे थे।

यद्यपि हर्षकालीन आर्थिक परिस्थिति में कृषि को ही प्रधानता थी परन्तु व्यवसाय तथा व्यापार की कमी न थी। ग्राम के अतिरिक्त नगरों में लोग रहा करते थे और नगरों की स्थिति का पृथक्–पृथक् महत्व था। तीर्थस्थान, राजा की राजधानी तथा व्यापारिक मार्ग में नगर पैदा हो जाते थे। जो नगर समुन्द्री किनारे पर स्थित रहते थे। उनका वैभव भीतरी देश पर अवलंबित रहता था। कोई–कोई बंदरगाह अपने स्थान के कारण विशेष महत्व रखता था।

हर्ष के समय में भी विदेशों से व्यापार होता था। बंगाल में ताम्रलिप्त एक प्रधान बंरगाह था। उसके बाद की सदियों में भी वे स्थान अपना कार्य करते रहे। संभव है हर्ष ने भी पश्चिमी मार्ग का प्रयोग किया होगा ताकि उसकी सेना पुलकेशीन द्वितीय को परास्त करने में सफल हो सके। वल्भी का शासक भी प्रयाग तक समारोह में आता रहा, इस कारण उज्जैन के मार्ग की प्रधानता अवश्य ही थी। बाण कहता है कि थानेश्वर नगरी 'प्रार्थियों के लिए चिन्तामणि भूमि' तथा 'व्यापारियों के लिए लाभ भूमि' थी।[33] थानेश्वर देश की सम्पतिशालिता का प्रधान कारण उसका व्यापार ही था।[34] युद्ध के कारण आर्थिक स्थिति में अधिक परिवर्तन न हो पाता और हर एक ढंग का व्यवसाय चला करता था। इसका एक विशेष कारण था। ग्राम में पंचायते स्थापित थीं जो स्वतंत्र रूप से गांव का प्रबंध करती रही। चाहे जो कोई शासक होता ग्राम के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था। व्यापार की भी यही हालत थी। उस समय व्यवसाय पूंजीपतियों के हाथ में नहीं था वरन् श्रेणी नामक संस्थायें सब व्यापारिक कार्य करती थी।[35] गण–पद्धति भारत में बहुत समय से प्रचलित थी, उसी ढंग पर व्यापारियों के संघ (गण) विद्यमान थे। यह संघ व्यापार का कार्य करते, सिक्कों की शुद्धता जांचते तथा बैंक का काम करते थे। हर्षकाल में पटकार, वैलिक, मृत्तिकार, शिल्पकार तथा वणिक आदि अनेक प्रकार की श्रेणियां विद्यमान थीं। व्यापारिक संस्थायें अपने व्यवसाय को भी शिक्षा दिया करती थी। इसलिए व्यापार अच्छे ढंग से चलता था। श्रेणी का एक प्रधान या अक्ष्यक्ष होता था, जिसकी सहायता के लिए दो, तीन या पांच प्रबन्ध अधिकारी होते थे। प्रबन्ध अधिकारियों को अधिकार था कि वे गलत आचरण करने वालों को जैसा ठीक समझें दंड दें। साधारण प्रताड़ना या डांट–फटकार से लेकर निष्कासन तक का दण्ड दिया जा सकता था। बाण ने भी इस प्रकार के शिल्प–संघ का विवरण हर्षचरित में दिया है।[36] इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रेणियों का इतिहास बहुत लम्बा है जिसका वर्णन अनुपयुक्त होगा।

इस समय की व्यापारिक संस्थायें नाना प्रकार के कार्य निर्विघन रूप से करती रही। परन्तु देश में एकछत्र राज्य की अनुपस्थिति से सबका सम्मिलित प्रभाव प्रगट न हो पाया। पहले की तरह काम करने पर भी श्रेणियां संगठित न हो सकी।[37]

राजनैतिक परिस्थिति अनुकूल न होने पर भी देश तथा विदेश से व्यापार समुचित ढंग से चलता रहा। श्रेणियों की अनेक संस्थायें पृथक्–पृथक् स्वतंत्र रूप से कार्य करती रही। उस समय हट्ठमति, शौल्किक तथा तारिक नामक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। शौल्किक बाज़ार से चुंगी ग्रहण करता था और तारिक नदियों के घाट पर टैक्स वसूल करने के लिए नियुक्त किया जाता था। हट्ट (बाज़ार) का नाम भी कई बार आता है। बाज़ार के निमित ज़मीन खरीदने का विवरण मिलता है। इसलिये हट्टिका से बाज़ार संबंधी कर का अर्थ समझा जाता है। सारांश यह है कि व्यापार के नियमित बेचने के लिए स्थान–स्थान पर बाज़ार थे और सड़क तथा नदियों से सामग्री आया करती थी। थानेश्वर देश की धनाढ्यता का प्रधान कारण उसका व्यापार ही था।[38] वहाँ के अधिकांश लोग व्यापार में लगे रहते थे।

च्वान्–च्वांग और बाण दोनों के विवरणों से ज्ञात होता था। देश की अतुल संपति का कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी था। यह व्यापार स्थल तथा जल दोनों मार्गों से होता था। च्वान्–च्वांग ने कपिशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ भारत के प्रत्येक कोने से व्यापारिक सामग्री पहुंचा करती थी।[39] कपिश से विदेश ईरान तथा यूरोप तक मार्ग जाता था जिस पर भारत के व्यापारी आया–जाया करते थे। कश्मीर से होकर मध्य–एशिया तथा चीन तक भारत का व्यापार होता था।[40] जलमार्ग उन विभिन्न बन्दरगाहों से होकर जाया करता था जो गुजरात, मालाबार, लंका, चौलदेश, आंध्र, कलिंग तथा समतट के तटों पर स्थित थे। सबसे अधिक चालू रास्ता बंगाल की खाड़ी में ताम्रलिप्ति से था जो दक्षिणी–पूर्वी द्वीप–समूहों के बन्दरगाहों को स्पर्श करता था। यह मार्ग सुमात्रा से मलयद्वीप के बन्दरगाह को छूता हुआ जलडमरूमध्य पार करता हुआ चीन की खाड़ी में पहुंचता था। उड़ीसा (आड्रे)[41] का वर्णन करते हुए च्वान्–च्वांग ने लिखा है कि भारत के दक्षिण पूर्व सीमा पर यानी समुन्द्र के किनारे चरित्र[42] नामक नगर था। यहां से व्यापारी दूर देशों तक जाते थे और विदेशी व्यापारी यहाँ आकर ठहरा करते थे। नगर की दीवार बहुत ही मजबूत तथा ऊँची थी, अतएव सुरक्षित स्थान में अमूल्य पदार्थ एकत्रित होते थे। भारतवासी समस्त जलमार्गों से परिचित थे। हमें

कई ऐसे प्रमाणों से ज्ञात होता है कि हर्ष के समय में लोग चीन जाया करते थे। हर्ष के सिंहासन रोहण के तनिक पूर्व 603 ई. में भारत के समुद्र तट से 5000 भारतवासी जावा गये थे। बाण से ज्ञात होता है कि श्रीकंठ जनपद की भूमि की सिंचाई फारस जैसे कुंए से की जाती थी।[43] हर्षचरित में बाण कहता है कि हर्ष के समय में चीनांशुक नामक वस्त्र काफी प्रचलित था जो चीन सिल्क से तैयार किया जाता था।[44] हर्ष के चीन के राजा के साथ अपना कूटनीतिक संबंध कायम किया था। च्वान्–च्वांग के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि हर्ष का राज्य चारों तरफ से नदियों तथा समुन्द्रों से घिरा हुआ था और चीन जाने के लिए सड़कों का निर्माण कराया था।[45] च्वान्–च्वांग के कथनानुसार मलकूट देश की समुन्द्री यात्रा काफी सुरक्षित थी। मलकूट में एक ऐसा बन्दरगाह था जिसके सहारे लंका तथा अन्य देशों से व्यापार किया जाता था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के उपनिवेश लंका में भी बसाए गए थे, जिसके माध्यम से भारतीय व्यापारी फारस, जावा आदि देशों में जाया करते थे।

साधारणतया विनियम का माध्यम वस्तुएं ही थीं। लेकिन देश का विनिमय एक निश्चिय माध्यम के आधार पर होता था। हर्ष युग में अधिकतर चांदी के सिक्के तैयार होते रहे और वह भी कम संख्या में। तत्कालीन मुद्रा नीति शासकों के हाथों में थी जो राज्य के लिए टकसाल रखते और अपने ढंग का सिक्का तैयार कराते थे। च्वान्–च्वांग कहता है कि सोने या चांदी के सिक्के, कौड़ियों और मोतियों के विनिमय के माध्यम के रूप में प्रचलित थे।[46] नेपाल का विनिमय का माध्यम तांबे की मुद्राएं थी।[47] विशेषकर कंगोद राज्य में विनिमय का माध्यम कौड़िया तथा मोती थे।[48]

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हर्षकालीन आर्थिक दशा का साहित्य में समृद्धि का चित्रण है तथा अन्य साक्ष्यों से यह काल आर्थिक दृष्टि से पतनशील था। कौशाम्बी तथा अहिछत्र नगरों की खुदाईयों से आर्थिक गिरावट पाई जाती है। चीनी यात्री च्वान–च्वांग के विवरण से भी यह पता चलता है कि इस काल तक कई शहर निर्जन हो चुके थे। इस काल में मुद्राओं तथा व्यापारिक व्यावसायिक श्रेणियों की मुहरों की न्युनता देखने को मिलती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह काल व्यापार–वाणिज्य के पतन का काल था तथा कृषि आधारित समाज बनता जा रहा था।

संदर्भ ग्रन्थ

[1] काले, कादम्बरी, पृ. 89
[2] वही, पृ. 84
[3] वाटर्स, जिल्द 1, पृ. 178
[4] वही, पृ. 177–78
[5] अग्रवाल, ह.ए.सां.अ., पृ. 55, हर्ष. का.टा., पृ. 79–80
[6] हर्ष. का.टा., पृ. 80; काणे, हर्ष., उच्छ्वास 2, पृ. 42
[7] वही, पृ. 79
[8] वाटर्स, जिल्द 1, पृ. 176
[9] वही, पृ. 276–77
[10] वही, पृ. 179
[11] वही, पृ. 154
[12] हर्ष, पृ. 189
[13] काणे, हर्ष, उच्छ्वास, 7
[14] हर्ष, काणे, उच्छ्वास, 7, अग्रवाल, ह.ए.सां.अ., पृ. 170
[15] ह्वेसांग की जीवनी, पृ. 189
[16] वही, पृ. 190
[17] वाटर्स, जिल्द 1,पृ. 152, 178
[18] हर्ष, का.टा., पृ. 109
[19] वाटर्स, जिल्द 2, पृ. 47
[20] वही, पृ. 181
[21] हर्ष, का.टा., पृ. 124
[22] वही, पृ. 123–124
[23] काणे, हर्ष., उच्छ्वासन 7, पृ. 167–70
[24] हर्ष, का.टा., पृ. 215
[25] अग्रवाल, ह.ए.सां.अ., पृ. 167–70
[26] वाटर्स, जिल्द 2, पृ. 241
[27] वही, जिल्द 1, पृ. 179
[28] वही, पृ. 300
[29] वही, पृ. 178
[30] पं. श्री जगन्नाथ पाठक, हर्षचरितम्, पृ. 321
[31] काणे, हर्ष., उच्छ्वासन 7, पृ. 189
[32] हर्ष., का.टा., पृ. 127

[33] हर्ष, का.टा., पृ. 81; काणे, उच्छ्वास 3, पृ. 43
[34] काणे, उच्छ्वास 3, पृ. 44
[35] गौरी शंकर चटर्जी, हर्षवर्द्धन, पृ. 322
[36] फ्यूरर, हर्ष, पृ. 158
[37] गौर शंकर चटर्जी, हर्षवर्द्धन, पृ. 323
[38] वाटर्स, जिल्द 1, पृ. 314
[39] वही, पृ. 208
[40] वाटर्स, जिल्द 1, पृ. 321
[41] वाटर्स, जिल्द 2, पृ. 194
[42] वही,
[43] हर्ष., का.आ., पृ. 79
[44] वही, पृ. 28
[45] वाटर्स, जिल्द 1, पृ. 159
[46] वही, पृ. 178
[47] वाटर्स, जिल्द 2, पृ. 83
[48] वही, पृ. 197